जनजातीय चेतना, कला, साहित्य, संस्कृति एवं समाचार का राष्ट्रीय मासिक

ककसाड़

वर्ष 11 अंक 113
अगस्त, 2025
मूल्य : 25/- रुपए

ककसाड़
राष्ट्रीय मासिक पत्रिका

ISSN 2456-2211

दिल्ली से प्रकाशित

ककसाड़

(जनजातीय चेतना, कला, साहित्य, संस्कृति एवं समाचार का राष्ट्रीय मासिक)

अगस्त 2025 **वर्ष-11 • अंक-113**

संस्थापना वर्ष 2015

प्रबंध एवं परामर्श संपादक
कुसुमलता सिंह

संपादक
डॉ. राजाराम त्रिपाठी

कानूनी सलाहकार
फैसल रिजवी, अपूर्वा त्रिपाठी

•

ग्राफिक डिजाईन
रोहित आनंद

• मुख्य कार्यालय एवं रचनाएँ भेजने का पता •

सी-54 रिट्रीट अपार्टमेंट, 20-आई.पी. एक्सटेंशन, पटपड़गंज, दिल्ली-110092

फोनः 9968288050, 011-22728461

•

• संपादकीय कार्यालय •

151, डी.एन.के. हर्बल इस्टेट, कोण्डागाँव, छ.ग.-494226

फोनः 9425258105, 07786-242506

ई-मेल : kaksaadeditor@gmail.com
kaksaadoffice@gmail.com

वेबसाइट : www.kaksad.com

मूल्य : **रु. 25** (एक प्रति), वार्षिक : **रु. 350/-** संस्था और पुस्तकालयों के लिए वार्षिक : **रु. 500/-** वार्षिक (विदेश) : **$110** यू.एस. आजीवन व्यक्तिगत : **रु. 3000/-** संस्था : **रु. 5000/-**

संपादन-संचालन पूर्णतः अवैतनिक एवं अव्यवसायिक

दिल्ली से प्रकाशित होने वाली 'ककसाड़' पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार उनके अपने हैं जिनसे संपादकीय सहमति अनिवार्य नहीं।

• ककसाड़ से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे • **कुसुमलता सिंह** स्वामी, मुद्रक एवं प्रकाशक।

अनुक्रम

दिल्ली लाइब्रेरी बोर्ड (संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार) द्वारा पुरस्कृत

4. **संपादकीय**

साक्षात्कार

10. आदिवासियों का गीत ही साहित्य है...
(झारखंड के आदिवासी समुदाय की कवयित्री **पार्वती तिर्की** से **नाइश हसन** की बातचीत)

लेख

6. प्राकृतिक बौद्धिकता बनाम कृत्रिम बुद्धि : **हरि राम मीणा**
12. जनजातीय हिंदी सिनेमा और आदिवासी विमर्श : **डॉ. मनीष जैसल**
17. मणिपुर की कुकी जनजाति... : **सन्तोष कुमार**
21. जनजातीय समाज की आदिम परंपरा स्मृति स्तंभ : **डॉ. नीलिमा गुप्ता**
24. परसाई एक कालजयी रचनाकार : **अरुण अर्णव खरे**
28. बिसर रहे लोक-संस्कार : **डॉ. प्रकाश पतंगीवार**
30. अपनी चुप्पियों को तोड़ते रहें : **भूपेन्द्र भारतीय**

कहानी

32. विरोध : **डॉ. कुसुम रानी नैथानी**

प्रसंगवश

34. सोफी कोवालेव्स्की की यादों में दास्तोएव्स्की : **अनुवाद– रूपसिंह चंदेल**

कविताएँ/चुने हुए शेर

29. **सुभाष वसिष्ठ** 39. **मोतीलाल दास 39. जितेन्द्र जलज 40. महेन्द्र मद्धेशिया 41. शेफालिका सिन्हा 41. पार्वती तिर्की 42. कमलेश भट्ट कमल**

यात्रा संस्मरण

43. नैनी और ताल के बीच : **कला कौशल**

पुस्तक समीक्षा

46. आँगन का शजर : **के. पी. अनमोल**

लघुकथा

16. लगन
27. **कहावतें**
23. **यादें**
31. **क्या है ककसाड़?**
47. **पत्र**

साहित्यिक एवं सांस्कृतिक समाचार

48. **रिपोर्ताज : कुसुमलता सिंह**

आवरण गोंड कलाकृति - नकुल पुशाम
(इनकी विशेषता है गोंड चित्र में फूल की तरह रेखाओं का प्रयोग)
मो. : 91314-33676

संपादकीय

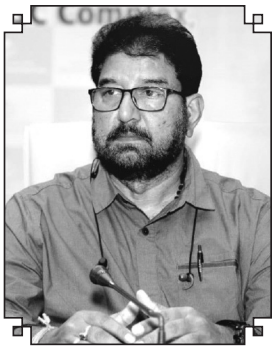

'ककसाड़' का अगस्त अंक आपके हाथों में है, भागती हुई दुनिया में जैसे कोई ठहराव,ताजगी की एक गहरी सांस और नए कागज की वह पुरानी सोंधी खुशबू, जो जुलाई-अगस्त में नई कक्षा की किताबों और कॉपियों से भरे बस्ते से आया करती थी। यह वही खुशबू है जो याद दिलाती है कि कुछ चीजें समय के कांटे से नहीं, स्मृति से कच्चे तागों के सहारे भी चलती हैं।

यह अंक उस समय आपके पास पहुँच रहा है जब धरती का तापमान, जल का स्तर और मानव का अहंकार तीनों अपनी-अपनी सीमाओं को पार कर चुके हैं। और ऐसे में हम सब एक सभ्यता के आखिरी सूरज के अंतिम प्रहर में खड़े हैं। पर दुःखद यह है कि जो लोग बाँसुरी बजा रहे हैं, वे अब सुनना भूल चुके हैं। मानव सभ्यता के नाम पर जो कुछ आज तक रचा गया, वह अब किसी तीर्थ की तरह नहीं, बल्कि किसी आगामी भयावह अंत की अग्रिम बुकिंग जैसा प्रतीत होता है।

जुलाई 2025 में जब यूरोप के जंगल सुलग रहे थे और अमेजन का विशाल क्षेत्र दावानल से भस्म हो रहा था, भारत के पाँच राज्य या तो जलमग्न थे या सूखे से कराह रहे थे। पर हमने अब आपदा को 'अपॉर्च्युनिटी' बना लिया है। कोई पर्यावरण पर सेमिनार कर रहा है, कोई 'सस्टेनेबिलिटी' पर पॉलिसी पेपर लिख रहा है, और कोई पानी की बोतलों पर शराब की ब्रांडिंग कर रहा है।

संयुक्त राष्ट्र के जलवायु वैज्ञानिकों की चेतावनी अब ष्खतरनाक इमरजेंसी अलर्टष् का रूप ले चुकी है। पृथ्वी का औसत तापमान अब 1.6 डिग्री सेल्सियस की सीमा को पार कर चुका है, जो 1850 के स्तर से लगभग विनाशकारी दूरी पर है। अकेले 2024 में जलवायु आपदाओं से विस्थापित लोगों की संख्या 6 करोड़ के पार पहुँच चुकी है। इसके बावजूद, हम अभी भी तकनीक के दर्पण में केवल अपना ष्स्मार्टष् चेहरा ही देख रहे हैं– डरावनी हकीकत नहीं।

आज पाश्चात्य दार्शनिक फ्रेडरिक नीत्शे की बात सबसे ज्यादा चुभती है– "Madness is rare in individuals, but in groups] it is the norm." यह श्सामूहिक पागलपनश ही तो है जिसने विज्ञान को हथियार बना दिया, बुद्धि को बॉट्स में बंद कर दिया, और प्रकृति को मुनाफे की इकाई बना दिया।

अब समय है कि हम पुनः अपने प्राचीन विस्मृत ज्ञान की ओर देखें, जहाँ "यद् भावं तद् भवति" (उपनिषद) की चेतावनी जल की भांति पारदर्शी तथा स्पष्ट थी– जैसा भाव, वैसा भविष्य। हमने प्रकृति को केवल साधन समझा, साध्य नहीं। नदियों को पूज्य कहा, पर बांधों से बाँध दिया। वनों को देवी कहा, पर ठेके में बेच दिया। और अब हिमालय के खिसकते पत्थरों में हमें डर नहीं, बल्कि डिजास्टर टूरिज्म के अवसर दिखते हैं।

लेकिन आज जब समूची "प्रगतिशील" सभ्यता हाँफ रही है, एक अदद साँस की तलाश में भटक रही है, तब भी कुछ सभ्यताएं श्वास की लय ताल में जी रही हैं और वे हैं हमारे तेजी से विलुप्त हो रहे 'जनजातीय समुदाय' वे जो मिट्टी की धड़कन को सुनते हैं जिनके लिए चंद्रमा कैलेंडर नहीं, खेती का सलाहकार हैय जिनके लिए जड़ी-बूटियाँ व्यवसाय नहीं, देवों का दिया जीवन का प्रसाद हैंय और जिनके लिए जंगल केवल लकड़ी नहीं, उनके व उनके पितरों का नैसर्गिक निवास हैं।

बस्तर, अबुझमाड़, झारखंड, दांडी, नीलगिरी और पूर्वोत्तर के जनजातीय समाजों के पास आज भी कुल 500 से अधिक ऐसी वनस्पतियाँ हैं, जिन पर आधुनिक चिकित्सा विज्ञान अब रिसर्च शुरू कर रहा है। बस्तर का सिरहा-गुनिया